डेरी समाचार

राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल (भा. कृ. अनु. परि.) की त्रैमासिक विस्तार पत्रिका

वर्ष 41 जनवरी-मार्च 2011 अंक 1

संस्थान समाचार

अखिल भारतीय पशुपालन अधिकारियों की कार्यशाला सम्पन्न

विगत दिनों राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल में दिनांक 3/12.2010 से 4/12.2010 तक दो दिवसीय 'अखिल भारतीय पशुपालन अधिकारियों की कार्य शाला' का सफल आयोजन सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर भारत वर्ष के विभिन्न प्रान्तों से पशुपालन एवं डेयरी विकास कार्यक्रमों से जुड़े हुए 80 अधिकारियों ने बढ़ -चढ़ कर भाग लिया। कार्यशाला के दौरान डेयरी व्यवसाय से जुड़ी आधुनिक डेरी तकनीकियों, नये परिवर्तनों और वैज्ञानिक सूचनाओं को अन्ततः उपयोगकर्ताओं तक पहुँचाने के लिये विविध प्रसार पद्धतियों की चर्चा की गई एवं कार्यशाला के माध्यम से पशुपालन एवं डेरी व्यवसाय से जुड़े हुए विकास अधिकारियों को ग्रामीण परिस्थितियों में डेयरी सम्बधित उभरती हुई उचित समस्याओं के समाधान का सुअवसर प्राप्त हुआ। कार्यशाला के चार तकनीक सत्रों में डेरी पशु प्रजनन, पोषण और स्वास्थ्य रक्षा प्रबन्धन सम्बन्धी जरूरतों पर विभिन्न वैज्ञानिकों और अधिकारियों के बीच विचार विमर्श हुआ।

डॉ. अनिल कुमार श्रीवास्तव, निदेशक रा.डे.अ. सं., करनाल के निर्देशन में कार्यशाला का आयोजन हुआ। कार्यक्रम समन्वयक डॉ. जैन्सी गुप्ता एवं आयोजन सचिव श्रीमती ऋतु चक्रवर्ती थी।

कार्यशाला के उद्घाटन और समापन सत्र के दौरान संस्थान के निदेशक डॉ. अनिल कुमार श्रीवास्तव ने दुग्ध उत्पादन बढ़ाने में उपयोगी डेरी सम्बन्धी तकनीकियों की चर्चा की। उन्होंने संकर नस्ल के पशुओं को बढ़ाने एवं दुग्ध उत्पादों के मूल्यवर्धन के लिये गुणवत्ता बढ़ाने की चर्चा की जिससे कि भारत दुग्ध उत्पाद निर्यात में विश्व में मान्यता प्राप्त कर सके। उन्होंने पशुओं की नस्ल संवर्धन के लिये कृत्रिम गर्भाधान पद्धति को अपनाने पर जोर दिया एवं पशुओं के समुचित पोषण के लिये खनिज लवण दिये जाने पर चर्चा की।

इस अवसर पर संस्थान के संयुक्त निदेशक डॉ. सुरेन्द्र गोस्वामी और डा. जी आर पाटिल विशिष्ट अतिथि के रूप में मौजूद रहे। इसके अतिरिक्त इस अवसर पर विभागों के विभिन्न प्रभागों के अध्यक्ष, वैज्ञानिक, तकनीकी अधिकारी, छात्र उपस्थित थे।

दीक्षान्त समारोह सम्पन्न

किसी भी संस्थान के लिये वे क्षण गौरवपूर्ण एवं अविस्मरणीय होते हैं जब वहाँ के विद्यार्थी अपना अध्ययन पूर्ण करके उपाधि प्राप्त करते हैं। राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान में नौवां दीक्षान्त समारोह दिनांक 19 फरवरी 2011 को उल्लास पूर्ण वातावरण में सम्पन्न हुआ।

इस अवसर पर पद्मभूषण प्रो. आर.वी. सिंह, अध्यक्ष, राष्ट्रीय कृषि विज्ञान, अकादमी, मुख्य अतिथि के रूप में पधारे और उन्होंने विद्यार्थियों को उपाधि प्रदान की।

अपने दीक्षान्त भाषण द्वारा उन्होंने विद्यार्थियों को प्रेरित और प्रोसाहित किया तथा कृषि की मौजूदा स्थिति की चर्चा करते हुए

सम्पादकीय

नववर्ष 2011 शुभागमन हो चुका है। हमारे संस्थान परिवार की कामना है कि सम्पूर्ण वर्ष हमारे कृषक बन्धुओं, पाठकों एवं पारिवारिक सदस्यों के लिये शुभ हो, मंगलमय हो और सुख समृद्धि दायक हो। दूध नहाओं की उक्ति साकार हो और लहलहाती फसलें हमेशा उनके जीवन में खुशियों के गीत गाऐं।

विगत वर्ष हमें खट्टी, मीठी यादों के साथ नयी सीख, प्रेरणा देकर जाता है जिससे हम नयी प्रगति की सीढ़ी चढ़ने में सफल होते हैं और नये अनुभवों के साथ आगे बढ़ते हैं। हमारे संस्थान का पशुपालकों से बहुत पुराना रिश्ता है। संस्थान द्वारा किये गए अथक शोध प्रयास पशुपालकों की सुख, समृद्धि बढ़ाने और देश की आर्थिक प्रगति और पोषण समस्या के समाधान से जुड़े हैं जिसको आप तक पहुंचाने में **डेरी समाचार** एक महत्वपूर्ण कड़ी है। प्रसन्नता का विषय है कि डेरी समाचार ने अपने जीवन के 40 वर्ष पूरे कर लिये हैं। यह पशुपालकों का एक लोकप्रिय पत्र है जिसको डेरी कृषकों के हितार्थ संस्थान द्वारा निशुल्क ही उन तक पहुँचाया जाता है।

डेरी समाचार ने एक लम्बी यात्रा पूरी कर ली है, जो कि अपने आप में विशेष महत्वपूर्ण है। हमारा प्रयास रहता है कि हम इसके माध्यम से संस्थान की गतिविधियों एवं डेयरी से जुड़ी जानकारियों को पशुपालकों के द्वार तक पहुँचाये साथ ही हमें पशुपालकों की प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा रहती है जिससे कि हम उनकी आवश्यकता के अनुरूप, ज्ञानवर्धक जानकारी उन तक पहुँचा सके।

बताया कि कृषि का राष्ट्रीय सकल घरेलू उत्पाद में 17 प्रतिशत योगदान है। कृषि से 50 प्रतिशत रोजगार उपलब्ध हो रहा है और 70 प्रतिशत भारतीय ग्रामीण शक्ति इसमें लगी है। उन्होंने अपने सम्बोधन में बताया कि कृषि से उत्पन्न जी. डी. पी. वृद्धि से गरीब लोगों की आय में चार गुणा अधिक वृद्धि होती है। पशुधन खण्ड के विकास और प्रगति से गरीबी कम होती है और रोजगार के नये अवसर जुटते हैं।

डॉ. श्री अशोक सिन्हा (आई ए एस) सचिव, खाद्य संसाधन, उद्योग मंत्रालय, भारत सरकार ने समारोह की अध्यक्षता की और विद्यार्थियों को प्रोत्साहित किया। इस विशिष्ट अवसर पर संस्थान के निदेशक डॉ. अनिल कुमार श्रीवास्तव ने संस्थान के कार्यकलापों और अनुसंधान उपलब्धियों पर प्रकाश डाला और बताया कि क्लोन गाईडेड तकनीकी से जन्मी गरिमा-2 और श्रेष्ठ ने विश्व स्तर पर संस्थान की प्रतिष्ठा और छवि को बढ़ाया है।

इस अवसर पर संस्थान के वैज्ञानिक डॉ. हरजीत कौर, डॉ. सुमित अरोड़ा, डॉ. ए.के.सिंह., डॉ. आर.के मलिक, डॉ. वाई एस राजपूत और डॉ.अवतार सिंह को उनके विशिष्ट अनुसंधान कार्य के लिये पुरस्कृत किया गया।

विद्यार्थियों को श्रेष्ठ थिसिज पुरस्कार से सम्मानित किया गया। गोल्ड मैडल प्राप्त विद्यार्थियों को पुरस्कृत कर उनका उत्साह वर्धन किया गया।

इस समारोह में कुल 19 बी टैक, 81 मास्टर और 32 डाक्टरेट डिग्री प्रदान की गई। इस अवसर पर विशिष्ट गण मान्य अतिथि उपस्थित थे।

लोबिया -गर्मियों में हरे चारे की उत्तम फसल

उत्तम कुमार

लोबिया गर्मी के मौसम में शीघ्र बढ़ने वाली फलीदार वार्षिक एवं स्वादिष्ट हरे चारे की फसल है। इसकी खेती प्राय: सिंचित क्षेत्रों में की जाती है। चारे की फसल के अलावा इसे दलहन, हरी फली व हरी खाद के रूप में भी उगाया जाता है। इसे मक्का, बाजरा, ज्वार के साथ बोयें तो इससे चारे की गुणवत्ता और भी बढ़ जाती है। गर्मियों में इससे दुधारू पशुओं की दूध देने की क्षमता समान रूप से बनाये रखने के लिए अवश्य खिलाना चाहिए। लोबिया के चारे में 15-20 प्रतिशत प्रोटीन और सूखे दानों में 20-25 प्रतिशत प्रोटीन पाई जाती है।

भूमि व खेत की तैयारी :

लोबिया की खेती के लिये दोमट मिट्टी सबसे उपयुक्त होती है। इसके साथ ही साथ रेतीली दोमट मिट्टी में भी इसकी खेती आसानी से की जा सकती है। इसके अलावा 5-0 से 6.5 पी.एच.मान वाली सभी प्रकार की भूमि में इसे उगाया जा सकता है। खेती की अच्छी तैयारी के लिए 2-3 जुताईयाँ पर्याप्त होती है। मिट्टी को भुरभरी बना लेनी चाहिए।

किस्में :

चारे की फसल के लिये लोबिया की विभिन्न किस्में उगाई जाती हैं।

रशियन जाइन्ट, एन.पी-3, सी-152, यू.पी.सी. 287, यू.पी. सी-5286- 5287, बुन्देल लोबिया-1,आई.जी.एफ.आर.आई 450 व सी-एस-88।

आई.जी.एफ.आर.आई-450 गर्मियों में बुवाई के लिए उत्तम है। इसके अलावा हरियाणा में चारे की फसल के लिये सी-एस-88 बड़ी अच्छी किस्म हैं। इसके पत्ते गहरे हरे रंग के तथा चौड़े होते हैं। इस किस्म की बिजाई सिंचित तथा कम सिंचाई वाले इलाकों में गर्मी एवं खरीफ दोनों मौसम में की जा सकती है। रशियन जाइन्ट की कटाई दो बार भी ली जा सकती है।

बुवाई का समय:

गर्मियों में लोबिया की बुवाई मार्च से मई अन्त तक कर सकते हैं क्योंकि इसका हरा चारा कमी वाले समय में मिलना शुरू हो जाता है। खरीफ की फसल के लिए इसकी बुवाई मध्य जून से जुलाई के अन्तिम सप्ताह तक की जा सकती है। मानसून देरी से आने पर सिंचाई करके लोबिया की बुवाई करनी चाहिए।

बीज की मात्रा :

पौधों की उचित संख्या व बढ़वार के लिए 35-40 किलोग्राम बीज प्रति हैक्टेयर की दर से पर्याप्त रहता है। एक हैक्टेयर में लगभग 3.33 लाख पौधे होने चाहिए। पंक्ति से पंक्ति की दूरी 30 सैं.मीटर रखनी चाहिए तथा हमेशा सीड ड्रिल से ही बुवाई करनी चाहिए। जब लोबिया को मिश्रित फसल के रूप में बोया जाए तो बीज एक तिहाई मात्रा ही प्रयोग करनी चाहिए। बुवाई के समय भूमि में उपयुक्त नमी होनी चाहिए। राइजोबियम कल्चर से उपचारित करके बुवाई करने से अच्छी पैदावार मिलती है।

खाद एव उर्वरक :

यदि गोबर की खाद उपलब्ध हो तो बुवाई से लगभग एक महीना पहले 5 टन प्रति हैक्टेयर के हिसाब से खेत में डालकर मिला देनी चाहिए। दलहनी फसल होने के कारण लोबिया की फसल में नाईट्रोजन की अधिक आवश्यकता नहीं होती है परन्तु शुरूआत में अच्छी बढ़वार के लिए 20 किलो नत्रजन बुवाई के समय प्रति हैक्टेयर की दर से डाले। बुवाई के समय ड्रिल के द्वारा ही 40 किलोग्राम फास्फोरस प्रति हैक्टेयर की दर से जरूर डालनी चाहिए। मिश्रित खेती में दूसरी फसल की मांग के अनुसार ही उर्वरक देना चाहिए।

निराई, गुड़ाई एवं खरपतवार नियंत्रण :

खरपतवार से फसल को बचाने के लिए ट्राईफ्लूरेलिन नामक खरपतवारनाशी के 0.75 सक्रिय तत्व को छिड़काव प्रति हैक्टेयर की दर से बुवाई से पहले करें। गर्मी की फसल में एक निराई -गुड़ाई पहली सिंचाई के बाद करें। खरीफ में बोई गई फसल में 20-25 दिन समय मिलते ही निराई-गुड़ाई कर देनी चाहिए।

सिंचाई एवं जल निकास :

मार्च-अप्रैल में बोई गई फसल में पहली सिंचाई बुवाई के 20-25 दिन बाद तथा मई में बोई गई फसल में पहली सिंचाई बुवाई के 15-20 दिन बाद करनी चाहिए। बाकी सिंचाईयाँ 15-20 दिन के अन्तर पर करें। ग्रीष्म ऋत की फसल में लगभग 4-5 सिंचाई की आवश्यकता होती है। बरसात के मौसम में बोई गई फसल में सिंचाई की जरूरत नहीं पड़ती है। खेतों में जल निकास का उचित प्रबन्ध होना चाहिए।

कीट नियंत्रण :

शुष्क मौसम में लोबिया की फसल पर हरा तेला नामक कीट का आक्रमण होता है। इसकी रोकथाम के लिए 500 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 500 लीटर पानी में मिलाकर प्रति हैक्टेयर छिड़काव करे परन्तु यह मुख्य रूप से ध्यान रखे कि छिड़काव के 7-8 दिन बाद तक लोबिया का हरा चारा पशुओं को न खिलाएँ।

कटाई एवं उपज :

लोबिया को हरे चारे के लिए कटाई बुवाई के 60-70 दिन बाद या 50 प्रतिशत फूल आने से लेकर 50 प्रतिशत फलियां बनने तक कटाई कर लेनी चाहिए फिर इसके बाद कटाई करने पर तना सख्त व मोटा हो जाता है और चारे की पौष्टिकता व स्वाद दोनों पर प्रभाव पड़ता है। देरी से कटाई करने पर प्रोटीन की मात्रा घट जाती है। रेशे की मात्रा बढ़ जाती है।

गर्मियों में लोबिया से हरे चारे की उपज लगभग 250-300 कुन्तल व खरीफ में 300-350 कुन्तल प्रति हैक्टेर प्राप्त हो जाती है। इसके हरे चारे को अकेले खिलाने से बेहतर है कि इसको सूखी कड़वी, मक्का, ज्वार या बाजरा के साथ मिलाकर खिलाएँ।

बीज बनाने के लिए फसल की कटाई लगभग 100-110 दिन बाद अर्थात उसकी परिपक्वता अनुसार करनी चाहिए। लोबिया की फसल से 8-10 कुन्तल बीज प्रति हैक्टेयर प्राप्त हो जाता है।

डेरी उद्योग: वैज्ञानिक तकनीकों से दूध की मात्रा ही नहीं गुणवत्ता भी बढ़ायें।

अंजलि अग्रवाल

डेरी उद्योग का भारत की कृषि आधारित अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थान है तथा इस उद्योग में ग्रामीणों को रोजगार प्रदान करने व उनके सामाजिक तथा आर्थिक स्तर को ऊँचा उठाने की असीमित संभावनाएं हैं। देश के कृषि सकल घरेलू उत्पाद (जी.डी.पी.) में डेयरी उद्योग क्षेत्र का योगदान 17 प्रतिशत है। हमारे देश का दुग्ध उत्पादन दुनियां में सबसे अधिक है लेकिन प्रति पशु उत्पादकता कम है। वर्ष 2009-10 के एक आर्थिक सर्वेक्षण के अनुसार हमारे देश में 108.5 मिलियन टन दूध का उत्पादन हुआ। आज उन्नत गुणवत्ता का दूध व दुग्ध पदार्थ अन्तर्राष्ट्रीय मानक के अनुरूप उत्पादत करने की आवश्यकता है। साथ ही अधिक उत्पादकता वाले

पशुओं की संख्या बढ़ानी होगी। बढ़ते वैश्वीकरण के संदर्भ में अंतर्राष्ट्रीय मानक को पूरा करने के लिए नई वैज्ञानिक तकनीकों को अपनाना आवश्यक हो जाता है। हमारे देश में डेरी उद्योग का विश्व के अन्य देशों जैसे कि आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, कनाडा तथा इज़राइल की तुलना में विकास अपेक्षाकृत कम है। अंतर्राष्ट्रीय मानक के अनुरूप दुग्ध उत्पादन करने से दुग्ध व दुग्ध उत्पादों को निर्यात करके अधिक लाभ कमा सकते हैं। पशु उत्पादकता बढ़ाने के लिए अच्छे आनुवांशिक क्षमता वाले सांडों का चयन करके उनका उपयोग किया जाना चाहिए तथा कृत्रिम गर्भाधान विधि को अपनाने की आवश्यकता है। दूध की मात्रा व गुणवत्ता बढ़ाने हेतु महत्वपूर्ण तकनीकों के बारे में इस लेख में बताया गया है

उत्तम गुणवत्ता का स्वच्छ दूध क्या है :

स्वच्छ दूध वह दूध है जो कि स्वस्थ पशु से प्राप्त हो, अच्छी सुगन्ध व स्वाद वाला हो, धूलादि कणों से मुक्त हो तथा जिसमें न्यूनतम मात्रा में जीवाणु हों जो कि मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए नुकसानदायक न हो।

भारत में दूध का उत्पादन अधिकतर गांवों में होता है। इसलिए प्रत्येक दुग्ध उत्पादक को स्वच्छ दूध बेचने की जिम्मेवारी समझनी चाहिए। खास तौर पर जबकि बहुत से डेरी उद्योग स्थापित हो रहे हैं। उत्तम गुणवत्ता के दुग्ध उत्पाद निम्न गुणवत्ता के दूध से नहीं बनाए जा सकते। उत्तम गुणवत्ता के दूध व दूध से बने पदार्थों से न केवल अधिक आर्थिक लाभ होगा अपितु नवजात शिशुओं तथा बढ़ने वाले बच्चों को अधिक ऊर्जा प्राप्त होगी तथा स्वास्थ्य अच्छा होगा।

दूध को शोधक तत्वों, रासायनिक तत्वों, जीव-जन्तु विनाशक तत्वों तथा प्रतिजैविक पदार्थ से अवशेषों से मुक्त होना चाहिए। यदि दूध का उत्पादन सावधानी से न किया जाए तो कई प्रकार की बीमारियाँ फैल सकती हैं जैसे कि आंत्र-ज्वर, कंठनाल-शोथ जोकि दूध के जरिये फैलता है। तपेदिक रोग पशुओं से मनुष्यों में हो सकता है, खास तौर पर बच्चों में माइकोबैक्टीरियम ट्यूबरकुलोसिस जीवाणु युक्त कच्चा दूध पीने से दूध में मौजूद जीवाणु पाचन तंत्र को प्रभावित कर सकते हैं। दूध में जीवाणुओं की संख्या अयन या थन में जीवाणुओं की संख्या पर, बाहरी स्त्रोतों से दूध से दूषित होने पर तथा जीवाणुओं से बढ़ने की दर पर निर्भर करती है।

स्वच्छ दूध कैसे प्राप्त करें?

दुधारू पशुओं के रहने का स्थान साफ-सुथरा होना चाहिए। दूध दोहने का स्थान शांत तथा साफ हो। थन को पहले अच्छी प्रकार धोकर सुखा लेना चाहिए। दूध दोहने के बाद 0.5 प्रतिशत आयडोफोर या 4 प्रतिशत सोडियम हाइपोक्लोराईड से थनों के अग्र भागों को साफ करना चाहिए। दूध दोहने के बर्तन साफ हों तथा इन्हें सोडियम हाइपोक्लोराईड से धोना चाहिए। पशु की उत्पादन क्षमता जानने के लिए प्रतिदिन दुग्ध उत्पादन नोट करना चाहिए। दूध निकालने के बाद टैंक में साफ स्थान पर 4-6 डिग्री सेंटीग्रेट पर रखने से जीवाणुओं की संख्या में वृद्धि रूक जाती है तथा दूध की गुणवत्ता बढ़ जाती है। दूध जमा करने वाली जगह फर्श साफ सुथरा हो। पशुओं में किसी प्रकार के संक्रमण की समय-समय पर जाँच करते रहना चाहिए।

दूध में कोशिका गणना (सोमैटिक सैला काउन्ट) :

दूध में कोशिका गणना को विश्व में दूध की गुणवत्ता का सूंचकांक माना जाता है। सोमैटिक सैल काउन्ट (एस.सी.सी.) दूध में उपस्थित श्वेत व एपीथिलीयल कोशिकाएँ हैं जो सामान्य रूप में दूध में आती हैं। सामान्य अवस्था में यह 30:70 के अनुपात में होती है। जबकि संक्रमण की स्थिति में श्वेत कोशिकाएँ बढ़कर 70 तक हो सकती है। इन कोशिकाओं की अधिक संख्या थन में संक्रमण तथा फलस्वरूप दूध की गुणवत्ता में कमी को दर्शाती है। सामान्यत: दूध में कोशिकाओं की संख्या 2-5 लाख प्रति मि.ली से कम ही होनी चाहिए।

थनैला रोग से बचाव :

यह रोग अधिकतर अधिक दुग्ध उत्पादन वाली गायों में होता है। इस रोग में अयन या थन के किसी भी भाग में सूजन आ जाती है। जिसमें दर्द होता है तथा छूने पर सूजन वाला भाग गर्म लगता है। इस रोग में पशु का दुग्ध उत्पादन कम हो जाता है तथा दूध की गुणवत्ता भी प्रभावित होती है। यह रोग अकसर पशुशाला में सफाई की कमी से होता है। यदि आरम्भिक अवस्था में थनैला की पहचान कर ली जाए तो डेरी उद्यमी आर्थिक हानि से बच सकता है। यदि पशु कम दूध देने लगे तो थनैला रोग का संदेह करना चाहिए। इस रोग में दूध में नमक बढ़ने से स्वाद खारा हो जाता है। सी.एम. टी. परीक्षण या मैस्टाइटिस स्ट्रिप से भी इसकी जाँच कर सकते हैं। दूध में थक्के या चिथड़े से आने लगते हैं। रोग से प्रभावित पशु को स्वस्थ पशुओं से अलग रखना चाहिए तथा यह दूध अन्य दूध में नहीं मिलाना चाहिए।

थनैला रोग से पशु व पशुपालक दोनों को हानि होती है। थनैला रोग न केवल दुग्ध उत्पादन को कम करता है। उस दूध को पीने वाले के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं। इस रोग में 21 प्रतिशत दूध तथा 25 प्रतिशत वसा में कमी हो सकती है। रोगी पशु की दुग्ध-ग्रंथि क्षतिग्रस्त हो जाती है। कभी-कभी पशु का थन ही बेकार हो जाता है। ऐसे पशु का बाजार भाव कम हो जाता है। पशु खरीदते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि पशु तपेदिक मुक्त हों। पशुओं में ब्रूसेलोसिस नामक रोग ब्रूसेला एबारटस से होता है। इससे मनुष्य को बुखार हो जाता है। यह रोग या तो ब्रूसेलोसिस से प्रभावित पशुओं से प्राप्त कच्चे दूध के उपयोग से या संक्रमित पशु से सीधे सम्पर्क द्वारा होता है। थनैला से पीड़ित पशु का दूध पीने से या थन छूने से पशुपालक को भी यह रोग लग सकता है। यदि पशु को स्ट्रेप्टोकोकस या स्टैफाइलोकोकस से थनैला हुआ है तो संक्रमित दूध पीने से मनुष्य में जठरांत्रशोथ, गैस्ट्रोएन्ट्राईसिस, भोजन विषाक्तता जैसे रोग हो सकते हैं।

टयूबरकुलोसिस जीवाणु जनित थनैला बच्चों में आंतों की टी. बी कर सकता है। यदि संक्रमित दूध से क्रीम या मक्खन बनाया

जाए तो उसमें जीवाणुओं की संख्या बहुत अधिक होती है तथा मनुष्यों में तपेदिक, संक्रामक गर्भस्त्राव (ब्रूसेलोसिस), फीवर आदि रोग हो सकते हैं।

विरल तत्त्व संपूरण :

दुधारू पशुओं के लिए आवश्यक विरल तत्त्व विटामिन ई, ए तथा सी तथा खनिज लवण सैलेनियम, जिंक व कॉपर हैं। ये सभी तत्व ऊतकों में अभिक्रियाशील प्रकार की ऑक्सीजन की मात्रा को कम करते हैं। पशु को ब्याने के आसपास के समय यह तत्व संपूरक के रूप में जरूर देने चाहिएं। इस समय पशु की रोगप्रतिरोधक क्षमता कम हो जाती है तथा विभिन्न बीमारियाँ जैसे थनैला व प्रजनन संबंधी बीमारियों के होने की संभावना बढ़ जाती है। विटामिन ई ताजे चारे में संरक्षित चारे की अपेक्षा अधिक मात्रा में पाया जाता है। सूखी घास (हे) तथा साईलेज में विटामिन ई की मात्रा कम हो जाती है। चारे को काटने के बाद जितनी देर कटा चारा सूर्य की रोशनी व ऑक्सीजन के सम्पर्क में रहता है, विटामिन ई की मात्रा उतनी ही कम हो जाती है।

सैलेनियम एक आवश्यक विरल तत्व है लेकिन जिन स्थानों की मिट्टी में सलैनियम की कमी नहीं है वहाँ सैलेनियम तत्व अलग से संपूरक के रूप में नहीं देना चाहिए अन्यथा पशु में सैलेनियम की विषाक्तता हो सकती है। कॉपर पशु की रोग प्रतिरोधक क्षमता के लिए आवश्यक तत्व है। कॉपर की कमी से जेर का रूकना, भ्रूण की गर्भ में मृत्यु तथा पशु की गर्भधारण क्षमता प्रभावित हो सकती है। जिंक भी रोग प्रतिरोधक तंत्र का आवश्यक घटक है। विरल तत्व सम्पूर्ण देने से थनैला रोग में 30-42 प्रतिशत तक कमी हो जाती है। पशु का दुग्ध उत्पादन बढ़ जाता है तथा उन्नत गुणवत्ता का दूध प्राप्त होता है। दूध की ऑक्सीडाइज़ड सुगन्ध व स्वाद भी उन्नत प्रकार का होता है।

पशु की शारीरिक अवस्था :

पशु की शारीरिक अवस्था की उनकी उत्पादन क्षमता पर प्रभाव पड़ता है। मध्यम शारीरिक अवस्था वाली गायों की उत्पादन क्षमता निम्न व उच्च शारीरिक अवस्था वाली गायों की अपेक्षा बेहतर होती है। अत: पशुओं के रखरखाव व पोषण संबंधी निर्णय लेते समय उनकी शारीरिक अवस्था का ध्यान रखना चाहिए ताकि पशु अधिक खाकर व उच्च शारीरिक अवस्था में पहुँचकर पशुपालकों के लिए नुकसानदेह सिद्ध न हो। मध्यम शारीरिक अवस्था वाली गायों में दुग्ध उत्पादन निम्न व उच्च शारीरिक अवस्था वाली गायों की अपेक्षा अधिक होता है तथा प्रजनन संबंधी बीमारियाँ भी कम होती है।

अत्यधिक गर्मी से पशु का बचाव :

भारत एक उष्णकटिबंधीय देश है तथा उत्तरी भारत में कुछ समय के दौरान अत्यधिक गर्मी की स्थिति होती है। संकर नस्ल की गायें अधिक गर्मी नहीं सह पातीं तथा परिणामस्वरूप उनकी उत्पादन क्षमता प्रभावित होती है। जब अधिकतम तापमान 33 डिग्री सेल्सियस से अधिक हो जाता है तो पशु के दुग्ध उत्पादन में 3 से 10 प्रतिशत तक कमी देखी गई है। गर्मी के मौसम में पशु अपने शरीर का तापमान सामान्य नहीं रख पाता तथा शरीर द्वारा उत्पन्न ऊष्मा को कम करने की कोशिश करता है। इसके लिए वह कम चारा खाता है जिसमें चयापचय क्रिया कम हो जाती है लेकिन जब गर्मी अत्याधिक हो तो पशु अपने शरीर के तापमान को अधिक बढ़ने से नहीं रोक पाता तथा गर्मी के तनाव में आ जाता है। अत: संकर नस्ल की गायों को अत्याधिक गर्मी से बचाना बहुत आवश्यक है।

पशु को छायादार स्थान पर रखना चाहिए। उत्तम परावर्तक छत सूर्य की किरणों से परावर्तित कर देती हैं तथा शैड के नीचे खड़े पशु तक कम ताप स्थानान्तर होता है। सफेद परतदार धातु या एल्युमीनियम की छत उत्तम परावर्तक है। छत के नीचे ऊष्मारोधक की तह लगाने से भी कम ताप छत के नीचे आता है। छत की ऊंचाई 11.5 से 14.5 फीट तक होनी चाहिए तथा गाय को कम से 3.5 से 4.5 मीटर तक स्थान चाहिए। इसके अतिरिक्त मिस्ट या फॉगस का प्रयोग किया जा सकता है। इसके प्रयोग से पानी महीन फुहारों के रूप में पशु पर गिरता है तथा पशु को गर्मी में राहत मिलती है। गर्मियों में इसके प्रयोग से दुग्ध उत्पादन 8 से 11 प्रतिशत तक बढ़ सकता है तथा दूध की गुणवत्ता भी बनी रहती है। पशु को दिन में 2-3 बार नहलाकर भी गर्मी से बचाया जा सकता है।

इन तकनीकों को अपनाने से पशु का स्वास्थ्य अच्छा होगा। स्वस्थ पशु से दूध भी स्वस्थ ही प्राप्त होगा। यदि हम उत्तम गुणवत्ता का दूध व दुग्ध पदार्थों का उत्पादन करें तो इन पदार्थों को निर्यात किया जा सकता है तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भारत विश्व बाजार में अपना स्थान बना सकता है।

पशुओं की दूध उत्पादन क्षमता कैसे बढ़ायें

शंकर शेटे एवं एस.के तोमर

निरन्तर बढ़ती आबादी की दूध की जरूरत पूरी करने के लिए हमारे दुधारू पशुओं की उत्पादन क्षमता बढ़ाना अति आवश्यक हो गया है। दूध एवं दूध से बने विभिन्न पदार्थों की मांग बढ़ रही है। लेकिन इसके साथ ही हरा चारा एवं दाने की कमी भी महसूस हो रही है। ऊपर से बढ़ती मंहगाई के कारण उत्पादन खर्च बढ़ रहा है ऐसे में पशुपालक के सामने उपलब्ध संसाधनों का कारगर तरीके से इस्तेमाल करके पशुओं की उत्पादन क्षमता बढ़ाने के अलावा और कोई विकल्प नहीं दिखाई देता।

पशु आहार :

दुधारू पशुओं को मुख्य रूप से दो तरह का आहार दिया जाता है :

1. नियमित शारीरिक क्रियाओं को पूरा करने के लिए निर्वाह आहार।

2. दूध उत्पादन के लिए उत्पादन आहार।

पशु को दिये जाने वाले चारे एवं दाने की मात्रा उसके दूध उत्पादन पर निर्भर होती है। यदि पशु का दूध उत्पादन कम (4-5 लीटर है) तो उसे सिर्फ अच्छी गुणवत्ता का हरा चारा, जैसे दलहनीय चारा-बरसीम, लोबिया इत्यादि ही काफी है और उसे अतिरिक्त दाना देने की जरूरत नहीं है। इससे ज्यादा उत्पादक पशु के लिए निर्वाह आहार के साथ-साथ प्रत्येक 2.5 लीटर दूध के लिए 1 किलोग्राम दाना देना जरूरी है। पशु के पेट के स्वास्थ्य के लिए आहार में हरे चरे के साथ सूखा चारा (भूसा) होना अनिवार्य है। पशुओं के पीने के लिए हररोज 50-60 लीटर ताजा एवं स्वच्छ पानी उपलब्ध कराएं। इसके अतिरिक्त पशुआहार में हर रोज 40-50 ग्राम खनिज लवण एवं 25-30 ग्राम नमक होना आवश्यक है। साथ ही 30-40 ग्राम मीठा सोडा नियमित रूप से खिलाने से चारे का पाचन अच्छी तरह से होता है।

दुग्ध उत्पादन	दाने की मात्रा (कि.ग्राम)	
	दुधारू गाय	दुधारू भैंस
5 कि.ग्राम	2.00	2.50
10 कि.ग्राम	4.00	5.00
15 कि.ग्राम	6.00	7.50
20 कि.ग्राम	8.00	10.00

प्रबंधन :

पशुओं को तीव्र गर्मी एवं सर्दी से बचाएं। दुधारू पशुओं को स्तनदाह (थनैला) से बचाने के लिए पशुशाला में सफाई को सर्वोच्च प्राथमिकता दें। बाहरी एवं अंदरूनी परजीवियों से बचाने के लिए समय-समय पर दवाई दें। विभिन्न बीमारियों से रोकथाम के लिए पशुचिकित्सक की मदद से टीके लगवाएं। पशुओं के गर्मी में आने का ध्यान रखें और सही समय पर कृत्रिम गर्भाधान करवाएं।

दुधारू पशुओं में थनैला की अनदेखी ना करें

दुधारू पशुओं में थनैला के कारण दूध उत्पादक घट जाता है, दुध में वसा की मात्रा कम हो जाती है तथा कभी पशु का थन दुग्ध उत्पादन हेतु हमेशा के लिए बेकार हो जाता है जिसकी वजह से पशु पालक को भारी आर्थिक नुकसान झेलना पड़ता है। इसलिए इस बीमारी की अनदेखी ना करके तुरन्त उपचार करवाना चाहिऐ। साथ ही पशुपालकों को थनैला के बारे में प्राथमिक जानकारी होना आवश्यक है ताकि वो अपने पशु को इससे बचा सके।

थनैला की किस्में :

1. तीव्र या लाक्षणिक थनैला:

इस किस्म में बहुत कम समय में थनैला के लक्षण दिखाई देते हैं। पशु को तीव्र बुखार आता है। थन लाल और गर्म हो जाता है। पशु को दर्द होता है और इसलिए वो बैचेन रहता है। पशु चारा बहुत कम खाता है। या खाना बन्द कर देता है। दूध उत्पादन घट जाता है और दूध पीले रंग का होना शुरू हो जाता है। थन में गांठ बन जाती है।

2. सौम्य या दीर्घकालीन थनैला :

इस प्रकार में थनैला धीरे-धीरे बढ़ता है इसलिए शुरू में पशुपालक से पहचान नहीं पाते। थन सख्त हो जाते हैं लेकिन पशु को अहसास नहीं होता। धीरे-2 पशु दूध देना कम करता है। लक्षण दिखाई न देने के कारण यह किस्म ज्यादा खतरनाक और नुकसानदायक होता है।

थनैला का उपचार :

सही समय पर जांच और उपचार करके पशु पूरी तरह से स्वस्थ हो जाता है प्रशिक्षित पशु चिकित्सक को बुलाकर पशु को प्रतिजैविक इंजेक्शन तथा पशु की रोग प्रतिकार क्षमता बढ़ाने वाली दवाईयां देनी चाहिए। दवाई देने के बाद तीन दिन तक प्रभावित पशु का दूध पीने के लिए इस्तेमाल नहीं करना चाहिए।

थनैला का प्रतिबंध :

1. पशु को दोहते समय पूरा दुध निकाले। थन पर यदि कोई जख्म हो तो उसका तुरन्त उपचार करें। दूध दोहने के लिए इस्तेमाल किये जाने वाले बर्तन स्वच्छ और जीवाणु रहित होना चाहिए।
2. पशुओं का शैड स्वच्छ हो तथा दूध दोहने वाला व्यक्ति निरोगी हो। उसके हाथ के नाखून बढ़े हुये ना हों। दोहने के लिए बंद मुट्ठी का प्रयोग करें।
3. पशु का दूध जल्दी से (सात मिनट के अंतर) निकालना चाहिये।
4. शुरू में हर थन से थोड़ा दूध निकालकर उसे फेंक देना चाहिऐ।
5. दोहने के बाद पशु कुछ देर के लिए नीचे न बैठने न दें। इसके लिए उसे हरा चारा या संतुलित खाद्य दें तथा उसका ध्यान खाने पर रहे और वो नीचे न बैठे।
6. दूध निकालने से पहले और बाद में थन स्वच्छ पानी से धोकर साफ कपड़े से सुखाये। बाद में थन निसंक्रमण दवाई युक्त पानी में डुबोयें।
7. थनैला से प्रभवित पशु को अलग बांधे तथा उनका दूध निकालकर फैंक दे।
8. पहले स्वस्थ पशु का दूध निकाले और प्रभावित पशु का दूध सबसे आखिर में निकालें।
9. प्रभावित पशु के थन से पूरी तरह से दूध निकालने के लिए उसमें छोटी सी पाईप (सायफन) डालें। बाद में थन के अंदर प्रतिजैविक दवाई छोड़े।
10. थनैला के लक्षण दिखाई देते ही बिना वक्त गवायें पशु चिकित्सक से सम्पर्क करें और पशु का उचित इलाज करवायें।

मक्खन एवं घी बनाने के वैज्ञानिक तरीके

प्रविन्द्र शर्मा

हमारे देश में गांव में यदि किसी के पास अधिक मात्रा में दूध उपलब्ध होता है तो वे उसका घी बनाकर रख लेते हैं। दूध में पाये जाने वाले वसा तत्वों को अधिक समय तक रखने का यह बहुत पुराना और आसान तरीका है।

गांव में इस पुराने तरीके से घी बनाने की प्रक्रिया में जिस दूध से घी बनाना हो उसमें 50 प्रतिशत पानी मिला दिया जाता है और उसे सारा दिन गोबर के उपलों पर पकाया जाता है। शाम को दूध के पक जाने पर उसे नीचे उतार लिया जाता है फिर गुनगुने दूध में हल्का जामन लगाकर रख दिया जाता है। अगले दिन यह दही बन जाता है। इस दही को मथानी के साथ बिलोया जाता है जिससे मक्खन प्राप्त होता है। इस मक्खन से घी बना लिया जाता है या कुछ दिन तक मक्खन को एकत्रित करके गर्म करके फिर घी बनाया जाता है। इस मक्खन से घी बनाने की विधि बहुत आसान है। मक्खन को हल्की आंच पर गर्म कर उसको वाष्पीकरण द्वारा सुखाया जाता है। पानी सुखाने के बाद इसे इतना गर्म किया जाता है कि उसमें घी की महक आने लगे।

ऊपरलिखित विधि काफी आसान है और आदिकाल से हमारे यहाँ प्रचलित है। अगर इस विधि में हम अपनी वैज्ञानिक जानकारी और जोड़ दें तो हम दूध से अच्छी महक वाला, अधिक समय तक रखने वाला एवं अधिक मात्रा में घी प्राप्त कर सकते हैं। हमें गांव के पुराने तरीके में निम्नलिखित बदलाव करने की जरूरत है।

1. दूध को अधिक समय तक हल्की आँच पर गर्म नहीं करना चाहिये। दूध को एक बार उबालकर और ठन्डा करके उसमें जामन लगाना चाहिये।
2. जामन लगाने वाली दही अधिक खट्टी या मीठी नहीं होनी चाहिये। दही में किसी प्रकार के बुलबले नहीं होने चाहिये। दही 1-2 प्रतिशत दूध की मात्रा के अनुसार लगानी चाहिये। सर्दियों में गर्म एवं गर्मियों में ठन्डे स्थान पर रखनी चाहिये।
3. दही को बिलोते समय उसका तापमान (10° सैं.) होना चाहिये। इससे मक्खन की मात्रा अधिक एवं शीघ्रता से निकलती है।
4. मक्खन को अधिक समय तक ठीक अवस्था में रखने के लिये ठन्डे ताप का प्रयोग करना चाहिये।
5. मक्खन से घी बनाने के लिये मक्खन को हल्की आँच पर गर्म करना चाहिये। मक्खन का पानी सूखने के बाद आँच को बढ़ाकर इतना गर्म करें कि घी में हल्की महक आने लगे और घी में नीचे शेष रहने वाला पदार्थ हल्के भूरे रंग का हो जाये। इसका तापमान 110-120 सैं. तक होता है। इस प्रकार से बनाया गया घी अच्छी महक वाला एवं अधिक मात्रा में एवं लम्बे समय तक रखने वाला प्राप्त होता है।

यह तरीका बहुत ही छोटे पैमाने पर घी उत्पाद करने के लिये उपयोगी है। बड़े पैमाने पर घी का उद्योग करने के लिये निम्नलिखित विधि है।

दूध को (हल्का गर्म या ठन्डा) क्रीम सैपरेटर में डालकर क्रीम एवं सपरेटा दूध प्राप्त होता है। बड़े पैमाने पर घी बनाने के लिये क्रीम या क्रीम से मक्खन बनाकर उसे इस्तेमाल में लाया जाता है। क्रीम से घी बनाने के लिये, क्रीम को सीधा आँच पर पकाया जाता है। धीरे-2 हल्की आंच से क्रीम के पानी को वाष्पीकरण द्वारा निकाला जाता है और फिर उसमें घी बनाया जाता है।

इसके अलावा हम क्रीम से मक्खन निकालकर भी घी बना सकते हैं। क्रीम को पहले मक्खन में परिवर्तन किया जाता है। और उसके बाद मक्खन से घी बनाया जाता है। इस विधि से हम दूध में से 60-70 प्रतिशत वसा घी के रूप में प्राप्त कर सकते हैं। यह विधि अधिक मात्रा में घी निकालने के लिये उपयुक्त एवं लाभकारी है।

यह कुछ तरीके हैं जिनसे घी उत्पादन छोटे स्तर पर किया जा सकता है। इन विधियों से हमें अधिक घी की मात्रा में अधिक समय तक शुद्ध अवस्था में रहने वाला घी का उत्पादन गाँव में कर सकते हैं।

मादा पशुओं की प्रजनन सम्बन्धित विकृतियाँ

प्रस्तुति स्त्रोत: आधुनिक डेरी पशु प्रबन्धन

नियमित मद चक्र में चलते मुख्य तौर पर दो तरह की विकृतियाँ गाय,भैंसों में अक्सर देखने को मिलती हैं।

1. **गर्भाशय में सूजन (मैट्राइटिस)**

   मादा प्रजनन अंगों में गर्भाशय में संक्रमण होना एक प्रमुख समस्या है। इसमें गर्भाशय में संक्रमण होने की वजह में पशु गर्भाधारण से असफल रहते हैं। यह रोग 3 रूपों में प्राय: होता है।

1. **एन्डोमेट्राइटिस 2. मेट्राइटिस 3. पायोमेट्रा**

   इन सभी दशाओं में गर्भाशय में सूजन हो जाती है और कई बार मवाद या मैले रंग का स्त्राव भी आता है। ऐसी अवस्था में गर्भाधारण की कोई सम्भावना तब तक नहीं हो सकती जब तक पशु का पूर्व इलाज कराके उसे स्वस्थ हालत में नहीं लाया जा सकता है।

2. **इन ओव्यूलेशन**

   यह वह अवस्था है जब या तो अण्डा अण्डाशय में पूरी तरह से विकसित न हो पाये या फिर अण्डाशय समयानुसार फौलिकल नामक झिल्ली से बाहर न आ सके। ऐसी दशा के चलते गर्भाधारण की सम्भावना नहीं रहती है। अत: ऐसी अवस्था में पशु का योग्य पशु चिकित्सक से परीक्षण करायें। अण्डे का सही विकास न होने की स्थिति में फौलिगोन या रिसेप्टाल के टीके लगाये जा सकते हैं और डिम्बक्षरण न हो पाने की दशा में कोरूलोन (ल्यूटीनाईजिंग हारमोन) के टीके लगाकर पशु को उपचारित किया जा सकता है। लेकिन यह उपचार सिर्फ योग्य पशु चिकित्सक द्वारा ही कराना चाहिए।

3. **अनियिमत मद चक्र**

   अगर पशु 20-22 दिन के नियमित अन्तराल के बजाय इससे कम या ज्यादा में मदकाल में आता है अर्थात् मद चक्र 20-22 दिन से कम होता है तो ऐसे अनियमित मद चक्र में पशु को प्रजनन प्रक्रियाएँ भी प्रभावित हो जाती हैं। चूंकि ऐसा प्राय: अण्डाशय पर सिस्ट बनने की वजह से होता है जिसके चलते गर्भाशय की सम्भावना क्षीण होती है। अत: ऐसी अनियमितताओं का समय रहते परीक्षण एवं उपचार कराना चाहिए।

उपरोक्त समान्य जानकारी का अनुसरण करने एवं आवश्यकतानुसार पशु का परीक्षण एवं उचित उपचार समय पर कराने से प्रजनन सम्बन्धित अधिकतर समस्याएं नियन्त्रित रहती है और इन सबका दुग्ध उत्पादन एवं पशु की प्रजनन क्षमता पर निश्चित तौर पर सकारात्मक प्रभाव आता है।

सम्पादक मण्डल

1.	डा. जैन्सी गुप्ता डेरी विस्तार प्रभाग	अध्यक्ष
2.	डा. अमरजीत सिंह हरीका फार्म अनुभाग	सदस्य
3.	डा. वीणा मणि डेरी पशु पोषण प्रभाग	सदस्य
4.	डा. अवतार सिंह डेरी पशु प्रजनन प्रभाग	सदस्य
5.	डॉ. एस.के. कनौजिया डेरी प्रौद्योगिकी विभाग	सदस्य
6.	डा. महेन्द्र सिंह डेरी पशुशरीर क्रिया विज्ञान	सदस्य
7.	डा.बी.एस मीणा डेरी विस्तार प्रभाग	सदस्य
8.	डा. एन.एस सिरोही डेरी विस्तार प्रभाग	सदस्य
9.	श्रीमती मृदुला उपाध्याय डेरी विस्तार प्रभाग	सम्पादिका

बुक - पोस्ट
त्रैमासिक मुद्रित सामग्री

भारतीय समाचार पत्र रजिस्टर के अधीन पंजीकृत संख्या 19637/7

सेवा में,

द्वारा .....

डेरी विस्तार प्रभाग, ...

राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, ...

करनाल - 132 001 (हरियाणा), भारत

निदेशक, रा.डे.अनु.सं., करनाल द्वारा प्रकाशित

परिरूप, रूपरेखा डा. जैन्सी गुप्ता, अध्यक्ष, डेरी विस्तार प्रभाग, मुद्रण: डा. एस.के.कनौजिया, प्रमुख वैज्ञानिक (डी.टी), प्रभारी, प्रैस, रा.डे.अनु.सं., करनाल

प्रकाशन तिथि:- 1-1-2011 रा.डे.अनु.सं. प्रैस/36/6/11/3500